

स वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरघोक्षजे ।



अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

मोत्पादयेद् यदि रीति अम् एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । इब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करत जाव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षणकी अहंतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो अम व्यथं सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १८

गोराल्द ४८६, मास—नारायण २५, वार—वासुदेव
रविवार, ३० पौष, सम्वत् २०२६, १४ जनवरी १९७३

संख्या =

जनवरी १९७३

श्रीमद्भागवतीप श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीश्रुतिगणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०१८।१४-२०)

प्रलयकालमें भगवानने स्वरचित विश्वको अपने भीतर संहारपूर्वक शक्तियोंके साथ जब
योगन्त्रामें शयन किया, तब उनकी प्रथम निःश्वाससे प्रकट हुईं सभी श्रुतियोंने उनकी महिमाको
प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंद्वारा उनकी इस प्रकारसे स्तुति की थी—

जय जय जहूजामजितदोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तमगः ।

अगजगदोक्षामस्त्रिलशदत्यवदोषक ते क्षचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेण्यगमः ॥१४॥

जिनके द्वारा सत्त्व, रज और तमांगुण दोष रूपमें ग्रहण किये गये हैं, हे अजित ! उसी चराचर
मायाको आप नष्ट करके अपनी जय दिखाओ, जय दिखाओ; वयोंकि आत्मशक्ति द्वारा मायातीत आपमें

स्वरूपतः समस्त ऐश्वर्यं पूर्णरूपमें वर्तमान है, आप ही अन्तर्यामी रूपसे जगतकी अखिल शक्तिके उद्घोषन करनेवाले हैं, आप आत्मशक्तिसे ही इस बिपुल चिदजगतमें लीला करते हैं एवं किसी कारणसे अपनी छायाशक्ति भायाके प्रति ईक्षण कर उसके द्वारा सृष्टि आदि लीला करते रहते हैं—वेद आपकी इन दो प्रकार की लीलाओंका ही वर्णन करते हैं ॥१४॥

वृहुपलब्धमेतद्वयन्यवशेषतया यत उद्यास्तमयो विकृतेमृंवि वाविकृतात् ।

अत श्रूपयो दधुस्त्वयि मनोवच्चनाच्चरितं कथमयथा भवति भुवि दत्तपवानि नृणाम् ॥

हे प्रभो ! घड़ा आदि विकृत पदार्थोंकी जिस प्रकार मिट्टीसे ही उत्पत्ति एवं मिट्टीमें ही लय हो जाता है, उसी प्रकार जिस अविकृत ब्रह्म वस्तुसे निखिल जगतकी उत्पत्ति एवं प्रलय हो रहा है, वही ब्रह्म वस्तु (आप) एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं; अतएव मन्त्रहृष्टा अृषियोंने आपके प्रति ही सभी मन्त्र-वाक्योंके तात्पर्यं एवं अभिधान-समूह निर्णय किये हैं, परन्तु विभिन्न विकारसमूहोंके उद्देश्यसे उनका निर्णय नहीं किया है। क्योंकि मनुष्य मिट्टी पत्थर, ईंट आदि जिस किसी स्थानमें ही पदार्पण करें, वे सब जिस प्रकार पृथ्वी (भूमि) में ही स्थित हैं, उसी प्रकार वेदोंमें किसी-किसी स्थान पर विकारो देवताओंका वर्णन किये जाने पर भी वह वस्तुतः सबकारणस्वरूप आपका ही प्रतिपादक है ॥१५॥

इति तद्वृहुपलब्धिपतेऽखिललोकमलकापनकथामृता। विधमवगाश्च तपांसि जहुः ।

किमुत पुनः स्वधामविधृताशयकालगुणाः परम अजन्ति ये पदमजलसुखानुभवम् ॥

हे त्रिगुणमायामृगीको नचानेवाले ! विवेकशील महापुरुषोंने पूर्वोक्त कारणसे आपके अखिल-लोक पाप-विनाशन-कीर्तिलिपी सुधा-समुद्रमें गोता लगाकर अपने सभी संतापोंको दूर किया है। अतएव हे परमपुरुष ! जो लोग स्वरूप-स्मृत्तिके कारण राग आदि अन्तःकरणके धर्म-समूहोंका एवं वृद्धावस्था-व्याधि आदि सभी काल धर्मोंका परित्याग कर अखण्डानन्दानुभव स्वरूप आपकी सेवा करते हैं, वे पापमुक्त होंगे, इस विषयमें और क्या कहना ? ॥१६॥

द्वय इन पवसन्त्यसुभूतो यदि तेऽनुविधा महवृहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः ।

पुरुषविधीऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयोदिषु यः सदसतः परं स्वमय यदेष्ववशेषमृतम् ॥

सभी प्राणी आपके प्रति भक्तियुक्त होनेसे ही यथाथ रूपमें उनका जीवन सार्थक होता है, अन्यथा वे धौकनीके समान केवल व्यर्थ श्वास धारण करनेवाले हैं। हे देव ! मद्भृतत्त्व, अहंकार आदिने जिनके प्रवेश करनेसे सामर्थ्यवान होकर समष्टि-व्यष्टिरूप देहकी सृष्टि की है एवं जो जननयादि पञ्च कोषोंमें प्रवेश कर उन-उन आकारोंके रूपमें नयननोचर और अन्तमें कोष-पञ्चकके बाश्रय स्वरूप पुच्छरूपसे (आनन्दमयरूपसे) जिनके बारेमें उपदेश किया गया है, परन्तु स्वरूपतः स्थूल-सूक्ष्म पदार्थोंसे अतीत और पञ्च-कोषमें एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं, ऐसे आपकी ही सत्यपदार्थ नामसे कीर्तन करते हैं ॥१७॥

उदरमुपासते य ऋषिवत्मसु कूर्पहृष परिसरपद्धति हृदयमारुण्यो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुर्मरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृताम्तमुखे ॥

हे अनन्त ! ऋषि सम्प्रदाय-मार्गावलम्बि व्यक्तियोंमें स्थूल दृष्टिवाले लोग मणिपुर स्थित ब्रह्मकी उपासना करते हैं, किन्तु आरुणि सम्प्रदायके लोग सभी नाड़ियोंके मार्गं स्वरूप हृदयस्थ ज्ञान-शक्तिदायक सूक्ष्म वस्तुकी ही उपासना करते हैं। उसी हृदयसे आपका उपलब्धि-स्थान सुषुम्ना नाड़ी परम ज्योतिर्मय मस्तकसे अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रकी ओर निकलती है, उक्त स्थान प्राप्त होकर पुरुष पुनः मृत्युके मुखरूपी इस संसारमें पतित नहीं होता ॥१८॥

स्वकृतविचित्रोनिषु विशश्वित हेतुतया तरतमतश्चकास् स्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ॥
अथ वित्थास्वमूष्ठवित्थं तव धाम समं विजयियोऽनुयन्त्यमिविष्यत् एकरसम् ॥

हे देव ! आप स्वरचित विचित्र उच्च, नीच, मध्यम योनि अर्थात् अभिव्यक्ति स्थान देहादिमें उपादान रूपसे प्रविष्टकी तरह वर्तमान रहकर उनका अनुकरण करते हुए लकड़ीके भेदसे तारतम्यानुसार प्रकाशमान अग्निकी तरह इन सभी स्थानोंके तारतम्य रूपसे प्रकाशित हो रहे हैं। अतः इस लोक और परलोकके फलकी इच्छासे रहित निर्मलचित्त व्यक्ति इन सभी मिथ्याम्बरूप योनियोंमें जो समान भावसे स्थित हैं, ऐसे आपके केवल सत् स्वरूपको ही सत्य जानते हैं ॥१९॥

स्वकृतपुरेष्वमोऽववहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यदिलशक्तिष्ठृतोऽशकृतम्
इति नृगति विविच्य कवयो निगमावपनं भवता उपासतेऽग्निममवं भुवि विश्वासिताः ॥

सभी शास्त्र स्वकर्मद्वारा प्राप्त मनुष्य आदि विभिन्न शरीरोंमें कार्य-कारण रूप आवरणशून्य दशामें वर्तमान जीवको सर्वशक्तिसम्पन्न परिपूर्णस्वरूप आपका ही अंश या कार्य बताते हैं, पण्डित लोग ऐसे जीवतत्त्वकी आलोचना कर विश्वासके साथ इस पृथ्वीमें सभी वेदिकाः कर्मोऽव समर्पण-क्षेत्र स्वरूप संर भयकी निवृत्ति करनेवाले आपके चरण-कमलोंकी उपासना करते हैं ॥२०॥

(क्रमशः)

हमारा पथार्थ प्रयोजन क्या है ?

जगतमें हम जैसे विभिन्न व्यक्ति अपनी विभिन्न प्रकारकी कुतूहलताओंको पूरण करनेके लिए, इन्द्रियोंको चरितार्थ करनेके लिए आग्रह एवं अभिलाषा रखते हैं तथा यही हमारे स्वभावमें वर्तमान है। किन्तु यहाँ वर्तमान हम सभी एक विषयमें विशेषरूपसे रुचयुक्त हैं, वह है अकपट हरिभजन। दूसरे-दूसरे विषय हमारी तात्कालिक आवश्यकताओं-की पूर्ति कर सकते हैं। किन्तु हरिभजन ही हमारी नित्य सत्ता, नित्य ज्ञान, नित्य आनन्दके परिपूर्ण प्रयोजनको पूणतम रूपसे प्रदान करता है। कुछ गौण और तात्कालिक प्रयोजनके छलनामय चिन्तास्त्रोत हमें नित्य प्रयोजनके विचारसे आवृत और विक्षिप्त कर रहे हैं। यदि केवल वर्तमान प्रयोजनकी ओर ही हमारा मन आकृष्ट रहे, तो बहुतसे यथार्थ नित्य प्रयोजनके विषयोंके प्रति हमारी उदासीनता एवं उसके द्वारा उत्पन्न दुःख और सुख-भोगमें ही हमें अपने जन्म-जन्मान्तर बिताने होंगे। हम सबंदा अन्यकी अपेक्षा रखते हैं। दूसरेकी सहायताके बिना हम एक मुहर्ता भी अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकते। हमारी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ वेश्याओं की तरह रूप-रसादि विषयोंकी चक्रु-कण्ठादिके द्वारा अपेक्षा कर रही हैं। जब ये सभी इन्द्रियवृत्तियाँ विषयोंका वरण कर बारम्बार बंचित होती हैं, तब वे 'वृद्धवेश्या तपस्विनी' की तरह वैराग्य-भिखारिणी होकर मोक्ष-कामिनी होती हैं। किन्तु भोगकामिनी एवं मोक्ष-कामिनी इन्द्रियवृत्तियाँ किसी भी

प्रकारसे शान्ति प्राप्त नहीं कर सकतीं। मोक्ष-कामना कपटता या चतुर्वर्गके साथ भोग-कामना छोड़कर और कुछ भी नहीं है। भक्तिके पथमें अपेक्षा नहीं करनेसे—एकमात्र अद्वयज्ञान कृष्णको विषय या कान्त रूपसे वरण नहीं करनेसे इन्द्रिय-वृत्तियोंकी पूर्ण सार्थकता और पूर्ण पिपासा की सिद्धि नहीं हो सकती।

कर्म और ज्ञानके पथ जड़भोगमिश्र विचारसे परिपूर्ण हैं। अतएव वे अपस्वार्थ-परताको बढ़ानेवाले हैं। सोभाग्यक्रमसे इन दोनों विषयोंमें विपर्यगमी न होनेसे ही हम यथार्थ साधुकी कृपासे भक्तिके पथिक होते हैं। निकपट श्रीगुरुदेव ही उन प्राणनाशक कर्म-ज्ञानादिके पथसे हमारी रक्षा कर सकते हैं। कर्म और ज्ञानकी बातों अपस्वार्थपरताका अभियान है। भक्तोंका कहना है—“हमारा यथार्थ स्वार्थ क्या है, यह हम पहचान लेंगे।” भक्त भागवत और ग्रन्थ-भागवत हमारा यथार्थ स्वार्थ—ब्यष्ठि (प्रत्येक जीव) और समष्ठि (प्रतिनिधि जीव) के स्वार्थ, जो स्वार्थ निस्वार्थ और परार्थको लेकर वर्तमान है, ऐसा विमल स्वार्थ प्रचार करते हैं। भक्त भागवतकी कृपा होने पर भागवतका अधिवेशन स्थान दशन कर हम धन्यातिधन्य हो सकेंगे। जिस स्थानमें महाराज परीक्षित् अपने राज्य-सिंहासन आदि सब कुछ परित्याग कर, एकान्त होकर आये थे, उस स्थानमें जीवनकी क्षणभंगुरता, अवश्यंभावी अनित्यताकी बात जानकर

महाभागवत मुख्ये प्रवाहित हरिकथा-श्वरण करते हुए जीवनका बाकी समय यापन करना ही मानव-जीवनकी सर्वोत्तम साधनेकता है — यह आदर्श उन्होंने स्थापना किया था, जिस स्थानमें पंचम मानकी बात — परम वास्तव सत्यकी बात प्रकाशित हुई थी, हम सीभाग्यसे उस स्थानमें फिरसे श्रीचत्तेन्द्रदेवकी बातका श्वरण-कीर्तन कर सकेंगे । वहाँ कितने मुनि, ऋषि, धर्मवक्ता, शास्त्रकर्ता, ब्रह्म-ज्ञानी योगी, ज्ञानी, कर्मी, तपस्वी, द्रवी उपस्थित हुए थे । व्यास-शिष्य महाभागवत-वरेण्य शुकदेव ही एकमात्र महामहोपदेशक कीर्तनकारो रूपसे वरण किये गये थे । वयोंकि उन्होंने श्रीत-परम्परा द्वारा भगवद्गुरुकी बात सुनी थी—भागवतका श्वरण किया था । श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा है—भोग और मोक्ष कदापि प्राणी जगतकी समस्याओंके समाधानके मूलमन्त्र नहीं हो सकते । भोग-मोक्ष बांधा या अनुभवानसे रहित प्रकृष्ट रूपसे कपटता दूरीकृत भागवत धर्ममें हो—भक्ति-पथमें ही हम आत्मका परम लाभ अर्जन कर सकेंगे या सभी समस्या-समाधानका रहस्य प्राप्त हो सकेंगे । आत्म-हत्याका प्रणालीका पथ निर्भद्जानको बात परित्याग कर हम भात्को कथा शुनतेमें कानोंको नियुक्त करेंगे । करने एवं ज्ञानकी बलि-वेदीमें हमारी सेवा-प्रवृत्ति हरि-भक्तिको बलि देनेकी चेता बहिमुखिनी विनाधाराकी एक नेसर्गिक प्रवृत्तिके रूपसे जगतमें देखी जाती है ।

हम चाहते हैं वास्तव सत्य—एक सौ प्रतिशत—अश्य नहीं, पूर्णतम समग्र वास्तव सत्य । हम वास्तव चल्तुका पूर्णतम अधिभवि चाहते हैं, कर्म और ज्ञानरूपों राहद्वारा ग्रस्त

किसी सत्याभास या सत्य-विरोधको नहीं चाहते ।

सबसे पहले अपने स्वरूपका निर्णय आवश्यक है । नहीं तो मनोधर्मियोंकी असंख्य कल्पनाएँ और मतवाद किसी भी मंगलकी सीमाकी ओर नहीं ले जा सकेंगी । जब इन सभी मनोधर्मका अलात चक्र स्तब्ध हो जायगा, तब यह प्रश्न उठेगा “मैं कौन हूँ ?” मनोधर्मी व्यक्ति इस प्रश्नका उत्तर करने जायेंगे, तो उससे नास्तिक्य-संशय-सगुण-निर्गुण आदि परस्पर विवादपूर्ण मतों की सृष्टिमात्र होगी । अभिज्ञ-वादकी आखिरी सीमा एवं चरम भीमासा निविशेष गति या मायावाद तक है । किन्तु चिज्जगतके Sexological question (लिंगगत प्रश्न) उठाने पर क्लीब-ब्रह्मावादकी धारणा पूर्णता सम्पादन नहीं कर सकती, यही जाना जाता है । विषय और अवश्यके विचारके बिना वस्तुका पूर्णत्व साधित नहीं हो सकता । बाइबिलके Old Testament में भी ‘It god’ सीधारणाकी प्रतिध्वान सुनी जाती है । New Testament में सविशेष-विचारके आंशिक भावकी प्रतिध्वनि मात्र ‘He god’ है । श्रीमहाभारत या श्रीगीतामें सविशेष पूर्णोत्तमवादका विचार देखा जाता है । धामद्वागवतमें पुरुषोत्तमवादका पूर्णतम विचार अर्थात् स्वराट् लीला-पुरुषोत्तमका विषय कहा गया है । वेदान्त-पारिज्ञात सौरभ-कीस्तभमें श्रीगौरमुन्दरके जनानुकामित केशव-काश्मोरीने त्रिविद लिंग-पर्यायकी आलोचना की है ।

अप्राकृत शब्द-ब्रह्म ही ये सभी विचार प्रकट करते हैं । अप्राकृत शब्द-

बहु ही 'He God', 'She God' और 'It God' की पूर्ण मीमांसा एवं चित्तसमन्वय प्रदर्शन करते हैं।

अधोशब्द शब्द-बहु ब्राह्मी, खरीष्टी, सानुकी, एकरास आदि लेख-प्रणाली हारा जानने योग्य अभिधानिक शब्दसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं, अप्राकृत शब्दके विशेष नाम-रूप-गुण-लीला-परिकर्वैशिष्ट्य वर्तमान हैं। अप्राकृत शब्द कानोंको छोड़कर जो दूसरे चार इन्द्रिय (आँख, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) हैं, उन्हें नियमित करते हैं। प्राकृत शब्द को आँख, नाक, जिह्वा और त्वचा माप सकते हैं, परोक्षा कर सकते हैं, किन्तु अप्राकृत शब्द इन सभी इन्द्रियोंकी परीक्षाके विषय होता हो दूर रहे, उलटे वे इन्द्रियों इन शब्द-बहु ब्राह्मी नियमित और संभवित होती हैं, अप्राकृत शब्द किसी भी प्रकारसे प्रतियोगिता करनेके पात्र नहीं है। वे अप्रतिद्वन्द्वी, असमोद्दृढ़ विशेषतायुक्त, सबशक्तिमान, एक साथ सभी वृत्तियोंके आधार, सर्वकल्याण-निर्नेत्र, सर्वनियामक और सर्वप्रभु हैं। ये हमारे मस्तिष्कको, तुद्धिवृत्तिको, हमारी पूर्व अभिज्ञताको, अन्त विचारको अमपूर्ण नेसुगिक चिन्ताधाराको, मनोधर्मसे उत्पन्न प्रतिद्वन्द्विताकी प्रवृत्तिको नियमित करेंगे। शब्दास्त्र जागतिक अभियान का सारी विभीषिकाओंको छिप-निछिप कर वहाँ निखिल कल्याण-लक्ष्मीदा स्वराज्य स्थापन करेगा, अप्राकृत वास्तव नाम, रूप, गुण, लीला, परिकर-वैशिष्ट्ययुक्त शब्दावतारका आसन प्रतिष्ठा करेगा।

अभिज्ञतावाद की निरर्थकता या अकर्मण्यताका ज्ञान मानव लोग वारम्बार जानकर भी अभिज्ञतावादको बलि-वेदीमें

प्राणविसर्जन करनेके लिए ही वे कुतसंकल्प हैं इसकी अपेक्षा और क्या आश्चर्य है? तीस वर्षकी अभिज्ञता पचास वर्षकी अभिज्ञताके निकट पराजित है। पचास वर्षकी अभिज्ञता सी वर्षकी अभिज्ञता निकट संकीर्ण एवं गोपपूर्ण है, सी वर्षके अभिज्ञता हजार वर्षको अभिज्ञताके निकट सम्पूर्ण आन्त एवं विपरीत कहकर प्रतिपन्न है। अतएव अभिज्ञताका 'स्वर्गका सोनान' या रावण का विचार-पथ परित्याग कर शब्दावतारके पथमें आत्मसमर्पण ही हमारा सनातन धर्म है, यहो धौत-पथ है।

आत्माका नित्य धर्म क्या है? कर्मजड़-समार्त धर्म, पूर्व मीमांसाका प्रतिपाद्य क्षयिष्यु धर्म, अथवा घटाकाश, पटाकाश, मठाकाश आदिके विचारमें अभिज्ञतावादके जो सभी पिण्ठ-पेषण या यातना देखी जाय, वह आत्मा का नित्य धर्म नहीं है। कदापि जीवात्मा 'जड़ साम्य वस्तु' नहीं है। जीवात्मा कदापि अनित्य नहीं है, जीवात्मा कदापि मिथ्या नहीं है, जीवात्मा कदापि परमात्मा नहीं है। 'जीव' सर्वदा ही आश्रयका भिखारी है। जीवात्मा के परमाश्रय भगवान् या परमात्मा हैं।

जगनके आश्रय, विषय आदि सभी ही अगिल्य हैं। नाम, रूप, गुण, क्रिया, परिकर सभीको अनित्य कहकर अनुमान, प्रमाणके बलसे हम यदि तुराय मान, पंचम मानकी वातों को भी तृतीय मानकी भूमिकामें खीच-कर लाना चाहें या सम्पत्तियालो हो जाने पर भी छोटे-सोटे कार्यमें व्यस्त होने की तरह तृतीय मानके प्रत्यक्ष, अनुमान आदि तुराय मानके राज्यमें ले जाना चाहें, तो अभिज्ञत्रु व हम जैसे अनभिज्ञ और कौन है?

हम कदापि ऐसे असम्यक्, अस्थिर सिद्धांत नहीं लेंगे कि कलीब व्रह्मावाद ही दार्शनिक अन्तिम मीमांसा है। हम भगवत्ताके पितृत्व विचारमें भी आवढ़ नहीं रहेंगे। हम भगवद् प्रीतिके विचार या विश्रम्भ सेवाके विचारको ग्रहण करेंगे। तब श्रील माघवेन्द्रपुरीपादके अनुगमन करते हुए कहेंगे—

श्रुतिमपरे सृतिमितरे भारत-

भन्ये भजन्तु भवभीताः ।

अहमिह नन्दं वन्दे

यस्यात्मिन्दे परंब्रह्म ॥

अर्थात् संसारके जन्म-मरण भयसे भीत व्यक्तियोंमें कोई श्रुतियों का, कोई स्मृतियोंका और कोई महाभारत का भजन करें, तो किया करें। परन्तु मैं तो उन श्रीनन्दरायजी की बन्दना करता हूँ जिनके आंगनमें परंब्रह्म बालक रूपसे खल रहे हैं।

और भी सर्वांगीन विश्रम्भ-सेवाके मूल महाजनके आनुगम्यकी लाजसामें स्व-स्वरूप की नित्य तिद्वृत्ति प्रकाश कर कहेंगे—

क प्रति क्षयविदुमीशो संप्रति

को वा प्रतीहिनायातु ।

दोषतितनयाकुर्वे

गोपवधूटीविदं ब्रह्म ॥

अर्थात् यह रहस्यकी बात किसीसे कहने के लिए समय नहीं है। भक्तिके अनुराग-रहित व्यक्ति भरी बातमें कसे विश्वास करेगा? निखिल श्रुतिशास्त्र प्राप्तपाद्य वह परंब्रह्म यमुना तीरके निकुञ्जमें गोपवधूटी श्रोराधिकाजोके सदैव समीप विराजमान हैं।

निखिल विचित्रता का विलय किस प्रकार हमारा प्रयोजन पूरण कर सकता है, यह मैं

चिन्ता कर सकता नहीं पा रहा हूँ। मैं अपने को नित्य पूर्णतमरूपसे अभिव्यता करना, नित्य विचित्रता का पूर्णतम विकाशमें प्रस्फुटित करना चाहता हूँ। श्रीमद्भागवत ही एकमात्र ग्रन्थ-सम्मानाद् है, जो नित्य-विचित्रताके विकाश-सम्बन्धमें परिस्फुट रूपसे कीर्तन करते हैं एवं कहते हैं कि यह जगत उस नित्य-विचित्रता-इश्वर का प्रतिवर्धक और विकृत-प्रतिविम्ब है। यदि हम श्रीमद्भागवतकी वाणीमें अपने सेवोन्मुखी कानोंको नियुक्त करें, तो ही सभी प्रकारके जटिल एवं मीमांसा-द्राम न होनेवाले प्रश्नकी गोरख-घन्धासे छुटकारा पा सकेंगे। परस्पर विशुद्ध भावपूर्ण मतवाद् श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त सुन्दर रूपसे समन्वित और मीमांसित हुए हैं। हम सब प्रकारसे श्रीमद्भागवतके वारणागत होंगे। अप्राकृत सरहस्य ज्ञान-विज्ञान एकमात्र अप्राकृत शब्दावतारके दीवरमें ही अवतीणे होता है—

शून्यसः अद्युया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टिततम् ।

नातिदीर्घं कार्यं भगवान् विश्वे हृदि ॥

(मा० २१-१४)

जो अक्ति शोहरिकी सुमंगल कथा अद्य-पूर्वक नित्य शब्द और स्वयं कीर्तन करते हैं, भगवान् अत्यन्त शीघ्र ही स्वयं उनके हृदय में आविर्भूत होते हैं। हरिरुचा-अवण-कृतन-कार्य की दूसरी चेष्टा द्वारा अर्थात् कृत्रिम रूपसे अष्टकाल-लीला स्मरणादिको धावद्यक्ता नहीं होती।

देहके क्षण-भंगुर हाथ-पांव आदि हैं। किन्तु अत्माके नित्य हाथ, नित्य पंर और नित्य आकार वर्तमान हैं। भगवानके पूर्ण चेतनमय हाथ-पंर आदि, रूप-तुला आदि

भगवान् की कृपासे ही चेतनके विज्ञानमें प्रकाशित होता है।

सच्चिदानन्द-विग्रह भगवान् कह रहे हैं—
मेरा रूप जीवकी किसी तरह की कल्पना का विषय नहीं है। जीव उसके मनोधर्मके कारणानमें मेरे आकार सृष्टि करनेकी धृष्टिता प्रदर्शन न करें। मैं स्वयं ही मेरे नित्यरूपको जोवकी चेतनमयो सेवोन्मुखी विशुद्धा वृत्तिमें प्रकाश करूँगा। शब्दावतारमें ही सभी शक्ति है। हमें किसी प्रकारकी कल्पना की तुच्छता या मिथ्य-कार्यको पूर्णचेतनके स्वतःसिद्ध प्राकट्य या आविभावमें अंगल या प्रतिबन्धक रूपसे धारण नहीं करना होगा। हम आश्रित हैं। आथ्रय-भिक्षाका नाम ही भक्ति है। वह

व्यक्तिगत अपस्वार्थ नहीं है, वह परम श्रेयःकी ल लसा है। हम श्रेयःपथके पथिक बनेंगे। हम सदा ही वास्तव अधोक्षज सत्यका बनुसन्धान करेंगे।

भगवदभक्त की भजनीय वस्तु और भजन वृत्ति नित्य वर्तमान हैं। उसमें प्रकृतिये उत्पन्न कोई भी वस्तु नहीं है। भजनीय वृत्ति वी निष्कपटतामें पिन्तुत्व, मातृत्व, क्लीबत्व, पुत्रत्वके विचारका यथायोग्य स्थान—सभी ही परिस्फुट होंगे। भक्ति ही आत्मा को वृत्ति है। कर्म और ज्ञान प्रवृत्ति वर्तमान प्राकृत तात्कालिक प्रयोजन की उपयोगी क्रियासे संयुक्त एवं आवृत-आत्माकी ही दो इत्तियाँ हैं। —जगदगुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्पती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

पौराणिकता और समन्वयवाद

१. उपासना-काण्डमें मूर्तिपूजा त्याग करना क्या सम्भवपर है?

“इश्वरकी प्राकृत मूर्ति नहीं है—यह वात सत्य है, किन्तु उगका सच्चिदानन्द रूपरूप अवश्य स्वीकार किया गया है। इस सच्चिदानन्दका पूर्ण आविभाव बद्धजीवमें सम्भव नहीं है, इसलिए मनुष्य परमेश्वरके जिस भावका ध्यान करे, वही अमर्यूर्ण, पौराणिक

भाव होगा। बावर्योंके डारा पौराणिकता सहजमें ही छूट जाती है, किन्तु उपासना काण्डमें वैसा सम्भव नहीं है।”

—त० सू० ३५ सू०

२. मुसलमान शास्त्रमें ईश्वरके सुद्ध चिन्मय रूपको क्या अस्वीकार किया गया है?

“श्रीगौराज्ञ महाप्रभुने चांदकाजीको बतलाया था कि कुरानमें केवल जिसमानि (कल्पित) मूर्तिका ही निषेध है, शुद्ध मुजर्रदि (चिन्मयी) मूर्तिका निषेध नहीं है। उसों प्रेममय मूर्तिका पैगम्बर साहबने अपने अधिकारके अनुसार देखा था, अन्यान्य रसोंके सभी भाव उसमें आच्छादित थे।”

—जै० ध० ६ठा अध्याय

३. प्रथम श्रेणीके पौत्रिक कौन हैं ?

“असम्य जंगली जातिके लोग, अग्नि-पूजक लोग और Jove (जोव), Saturn (सैटन) आदि ग्रहोंके पूजक ग्रीस देशके व्यक्ति प्रथम श्रेणीके पौत्रिक हैं।”

—चै० शि० ५।३

४. द्वितीय श्रेणीकी पौत्रिकता कैसी है ?

“जड़ीय-ज्ञानकी अत्यन्त आलोचना करते करते युक्तिद्वारा समस्त जड़ीय गुणोंके विपरीत निविशेष भावमें जब ‘ईश्वर’ बुढ़ि होती है, उस समय द्वितीय श्रेणीकी पौत्रिकता उपस्थित होती है।”

—चै० शि० ५।३

५. तृतीय श्रेणीके पौत्रिक कौन हैं ?

“अन्तमें निर्वाण प्राप्त करनेकी इच्छासे जो अक्ति विष्णु, शिव, पङ्क्ति (दुर्गा), गगोड़ और गुर्य आदि सगुण मूर्तियोंको अपने लक्ष्य (निर्वाण प्राप्ति) के साधनके उपाय कहकर कल्पना करते हैं, वे ईश्वरके नित्य स्वरूपको नहीं मानते। अतएव कल्पित मूर्तिकी सेवा करनेसे वे लोग तृतीय श्रेणीके पौत्रिक हैं।”

—चै० शि० ५।३

६. चतुर्थश्वेणीको पौत्रिकता क्या है ?

“योगी लोगोंकी कल्पित विष्णुमूर्तिका ध्यान ही चतुर्थ श्रेणीकी पौत्रिकता है।”

—चै० शि० ५।३

७. पंचम श्रेणीके पौत्रिक कौन है ?

“जो जीवको ही ईश्वर मानकर पूजा करते हैं—वे पंचम श्रेणीके पौत्रिक हैं।”

—चै० शि० ५।३

८. श्रीमूर्तिसेवा और पौत्रिकतामें में क्या भेद है ?

“श्रीमूर्तिसेवन और पौत्रिक विचारमें बहुत अन्तर है। परमार्थ-तत्त्वके निर्देशक श्रीमूर्तिसेवनद्वारा परमार्थ प्राप्त होता है; किन्तु निराकार तत्त्ववाद रूपी भौतिक तत्त्वके व्यतिरेक भावको परद्वाहु निश्चय करना अथवा मायिक किसी वस्तु या गठनको परमेश्वर समझना ही ‘पौत्रिकता’ अर्थात् भगवानको छोड़कर दूसरी वस्तुमें भगवानका निर्देश है।”

—कृ० सं० ६।१३

९. समन्वयवादियों की जल्पना-कल्पना कैसी है ? नवगौराज्ञवादी लोगोंका किस प्रकार दमन हुआ ?

“जो ५०० वर्ष पहले केवल वैष्णवमतके अनुकूल थे, उन्होंने ही पुनः आकर उस मत के स्थान पर सर्वमत-सामझस्यकारी एक प्रकारके मतका प्रचार किया है। यह धर्म ही जगतका साधारण धर्म होगा। उन्होंने और भी कहा है—किसी मतका आश्रय करनेसे विश्व प्रेम नहीं प्राप्त होता। सभी मतोंको

एक करनेसे जगज्जीवोंमें विश्व प्रेम उदित होता है। *** गत वर्ष श्रीमन्महाप्रभुजीने उन लोगोंको सम्पूर्ण रूपसे दण्ड दिया है। कितने ही लोगोंको पृथ्वीसे हटा दिया है। बाकी जो बचे, उन्होंने परस्पर विवाद कर अपने-अपने पैतृक व्यवसायोंका आश्रय किया है। केवल दो-एक व्यक्ति अब भी गौराङ्ग-प्रकाशका यत्न कर रहे हैं, तब सभ्य समाजमें कुछ न हुआ देखकर अन्तमें उन्होंने भज्जियोंके समाजका आश्रय किया है। महाप्रभुका क्या खेल है? कलि जितना ही मस्तक उठाये महाप्रभु क्षणमात्रमें उसके मस्तक पर मुद्रगरकी चोटद्वारा उसकी चेष्टा विफल कर देते हैं।"

—'नववर्ष विगत वर्षेर आलोचना' संसिग्निनी

स० तो० दा१

१०. वारतवर्षमें परमहंस कौन है एवं उनका आचरण कैसा है?

"अलम्पट रूपसे शरीर याद्वा निर्वाह कर सन्तुष्ट अन्तःकरणसे कृष्णैकजीवन होकर होकर सारग्राही व्यक्ति विचरण करते हैं। जिन सभी व्यवितयोंके दिव्यचक्षु हैं, वे उन लोगोंको समन्वय योगी जानते हैं, जो अनभिज्ञा कोपल-भद्र हैं, वे उन लोगोंको संमारासकत मानते हैं, कभी-कभी भगवदनिगुल कहकर भी स्थिर कर सकते हैं। सारग्राही व्यक्ति स्वदेशी-विदेशी सर्वलक्षण-सम्पन्न सारग्राही भाईको अनायास ही जान सकते हैं। उनके पहनाव, भाषा, उपासना-चिह्न और सभी व्यवहार भिन्न-भिन्न होने पर भी वे परस्पर भ्राता कहकर अनायास ही सम्बोधन कर सकते हैं। ये सभी व्यक्ति ही

—जगद्गुरु छै विष्णुपाद श्रीश्रील भवितदिनोद ठाकुर

परमहंस हैं एवं परमहंसी-संहिता श्रीमद्भागवत ही उनका शास्त्र है।"

—'उपक्रमणिका', क० स०

११. भिन्न-भिन्न आचार और साधनाएँ क्यों देखी जाती हैं?

"जिनका जैसा स्वभाव है, उनको उसो स्वभावका देवभाव, उसीके अनुगत शास्त्र वाक्य, एवं उसीका अवलम्बन करनेवाला संगी अच्छा लगता है। 'समशीला भजन्ति वै' इस न्यायके अनुसार जगत्में भिन्न-भिन्न साधना और भिन्न-भिन्न आचार स्वभावसे ही हो जाता है। उपास्य वस्तु एकको छाड़कर दूसरी नहीं है।"

—श्रीलघुभागवतामृत समालोचना

स० तो० ११३

१२. निरपेक्षता क्या भक्तिधर्म है? उसके द्वारा क्या सद्वस्तु निष्ठा प्रकाश पाती है?

"नित्यवस्तुमें निष्ठाके बिना जीवका किसी भी प्रकारसे मंगल नहीं होता। यदि सर्वनिष्ठा श्रेष्ठ हो, तो संसारमें और अशेष्ठ क्या है? जो जिसमें निष्ठा करता है, वही यदि अच्छा है, तब अच्छे-बुरेका विचार क्यों है? तब चिढ़ा-मिथी एक ही वस्तु हो जाती है। जीवके लिए तब साधन-भजनकी कोई आपश्यकता नहीं रहती। ऐसा होने पर वेद्यानिष्ठ लम्पट एवं वेद्या-संग्रहे विरक्त परमहंस—इन दोनोंमें क्या भेद है? तब क्या असत् और सत् दोनों एक ही हैं? अतएव सत्-वस्तु-निष्ठा ही श्रेयः है, अनिष्ठा ही दोष है। सभी विषयोंमें निरपेक्षताका अच्छा नहीं कहा जा सकता, परन्तु सत्-सापेक्ष होकर निरपेक्षताका विसर्जन देना ही कर्तव्य है।"

—'समालोचना' स० तो० २१६

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ-२४)

भक्तिरूपा भगवानकी शक्ति जो जीवमें प्रकाशित होती है, उसके भगवान ही कारण है। उन उन (भगवदनुशीलनोपयोगी) इन्द्रियादियोंका जो स्पन्दन है, उसके भी भगवान ही कारण हैं। इसलिए इन्द्रिय-स्पन्दन द्वारा भगवानका जीवके प्रति उपकारकाभासत्व ही देखा जाता है। अपने भक्तानुरंजन-स्वभाव विषयमें भगवानकी स्वकृपा-प्रबलता ही कारण है, यह बात माकण्डेय ऋषिके नर-नारायण स्तुतिमें वर्णित है—

कि वर्णये तत्र विभो यदुवीरितोऽसुः
संस्पन्दते तमनु वाङ् मन-इन्द्रियाणि ।
स्पन्दन्ति वै तनुजृतामजगर्वयोऽच
स्वस्याप्यथापि भजतामसि भाववन्धुः ॥

(भा० १२।८।४०)

हे विभो ! मैं आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ ? आपके द्वारा प्रेरित होकर ही प्राण स्पन्दित अवान् प्रवर्त्तित होता है एवं उसके पश्चात् वाक्य, मन और दूसरे इन्द्रियादियोंका स्पन्दन होता है, वह थृतियोंमें भी प्रसिद्ध है। केवल देही—जीवोंके लिए ही नहीं, परन्तु ब्रह्मा, शिव एवं मेरा अपना प्राण भी आपके द्वारा प्रेरित होकर स्पन्दित होता है। इसलिए यद्यपि किसीके लिए भी स्वतन्त्रता नहीं है, तथापि आपके द्वारा प्रवर्त्तित वाक्यादि द्वारा जो लोग

आपका ही भजन करते हैं, आप उनके द्वारा आत्माके बन्धु हुआ करते हैं।

इस इलोककी श्रीधरस्वामीकी व्याख्या— आपका व्याध वर्णन करूँ ? अर्थात् आपकी कृपाजुताका लेशमात्र वर्णन करूँगा। दारुहन्त्रकी तरह आपके द्वारा प्रवर्त्तित वाक्यादिद्वारा भजनकारी व्यक्तियोंकी आपके द्वारा प्रदत्त भक्तिद्वारा ही आप उनके बन्धु होते हैं।

भगवदनुभव-कर्तृत्व में भक्ति ही एकमात्र हेतु है, बुस्तीदेवीने यह बात कहा है—

शुद्धनित शुद्धनित तथेहितं जग्माः ।

त एव पश्यत्यजिरेन तावकं

भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥

(भा० १।८।३२)

हे भगवान् ! जो सर्वो व्यक्ति तुम्हारे चरित्रका निरन्तर श्रवण, कीर्तन, उच्चारण करते हैं या दूसरों द्वारा कीर्तन करने पर आनन्दित होते हैं, वे ही भवसंसारनाशक तुम्हारे पादपद्मोंका अति शीघ्र दरात करते हैं।

भक्तिद्वारा ही भगवत्प्राप्ति होती है, यह बात भगवान कृष्णद्वारा उद्घासे कहे गये वचनोंसे स्पष्ट जाना जाता है—

अवत्योद्गवानपापिन्या सर्वलोकमहेष्वरम् ।

सर्वोद्दत्यप्य ब्रह्मकारणं मोपयाति सः ॥

(भा० १।१।८।४५)

हे उद्धव ! मेरे वे भक्त अविनाशिनी नित्या भक्तिके बलसे ही सभी लोकोंके महेश्वर, सभीके जन्म, स्थिति और प्रलयके कारण, ब्रह्मस्वरूप अर्थात् वैकुण्ठवासी या वेदादिदास्त्रके कारणरूप मेरा सामीप्य प्राप्त करते हैं।

मेरे महेश्वरत्व का कारण यही है कि सभीकी उत्पत्ति एवं प्रलय जिनसे होता है, उसके कारणभूत ब्रह्मस्वरूप मेरा उपगमन करते हैं। गीतामें भी कहा है—

पुरुषः स परः पार्थं भक्त्यालभ्यस्त्वनम्यथा ।

हे पार्थ ! वे परम पुरुष एकमात्र अनन्या भक्तिद्वारा ही प्राप्त होते हैं, अन्य किसी उपाय से नहीं होते।

भागवत (११।१४।२१) इलोकमें—

भक्त्याहमेकया याह्यः अद्वायात्मा प्रियः सताम् ।

साधुओंको आत्मा, अतएव अतिप्रिय मैं एकमात्र अद्वाजनित भक्तिप्रभावसे ही वशीभूत होता हूँ।

भक्तिका भगवद्वशीकारित्व भगवानने उद्धवसे कहा है—

न साध्यति नां योगो

न सांख्यं धर्मं उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तपस्याणो

यथा भक्तिमोजिता ॥

(भा० ११।१४।२०)

हे उद्धव ! तोत्र भक्ति जिस प्रकार मुझको वशीभूत कर लेती है, उस प्रकार योग ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तपस्या एवं संन्यास गुणके वशीभूत नहीं कर सकते।

यहाँ विचारका विषय यही है कि साध्य एवं साधन, दोनों प्रकारकी भक्तिकी महिमाका निरूपण परस्पर अभिभूतरूपसे ही देखा जाता

है। अतएव वक्तव्य वर्तमान इलोकका केवल साधन-भक्तिमूलक तात्पर्य विचार करना कठिन है। तथापि यहाँ साध्य भक्तिकी महिमाको द्वारा या निमित्त कर साधन भक्तिकी महिमा-निरूपण ही इस इलोकका तात्पर्य है।

बद्धित कृष्ण अर्यासि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥

तेषां विकल्पं प्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥

(भा० ११।१४।१)

हे कृष्ण ! ब्रह्मवादी मुनि लोग बहुतसे थेयःसाधनकी बात कहा करते हैं। उनमें से सभी ही या केवलमात्र एक ही प्रधानता प्राप्त है ? भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उद्धवके इस प्रश्नके उत्तरमें इस साधन भवितका ही उपक्रम एवं—

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ

मत्पुण्यगाथा-श्वरणानिधाने ।

तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं

चक्षुर्यंवाजनसंप्रयुक्तम् ॥

(भागवत ११।१४।२६) के इलोकमें अर्थात् मेरी पवित्र कथाके अवण कीर्तन-आदिके द्वारा जीवात्मा जिस परिमाणमें परिमार्जित एवं निर्मल होते हैं, उसी परिमाणमें वे सूक्ष्म वस्तु (मेरे स्वरूप और रूप-गुण-लीला) का दर्शन प्राप्त करते हैं। इस भक्तिमें साधन भवितका ही उपसंहार किया गया है। विशेषकर—

दाध्यमानोऽपिमङ्गुक्तः विषयरजितेन्द्रियः ।

प्राय प्रगल्भ्या भवत्या विषयैर्नामभूयते ॥

(भा० ११।१४।१८)

मेरे प्राकृत (कनिष्ठ) भवत भी यदि किसी समय विषयोंद्वारा वाकृष्ट हों, तथापि वलवती भवितके प्रभावसे वे विषय द्वारा आक्रान्त या अभिभूत नहीं होते। इस

भगवद्वाक्यसे प्रारम्भ कर “दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथनि” (भा० १०।८।३५) अर्थात् नित्यानन्दमय आनन्दमें या परमात्मा-स्वरूप आपमें जो व्यक्ति एकबार मात्र भी अपना मनोनिवेश करते हैं, वे भी जीवोंके अन्तःसारनाशक गृहकी उपासना नहीं करते अर्थात् गृहके प्रति आमत्क नहीं होते। श्रुतिके इस स्तबोक्तिके कारण साधन भक्ति-महिमा निरूपणमें तात्पर्य निहित है, जाना जाता है।

विषयाविष्टचित्तानां विष्णवेशः सुदूरतः ।
वारण-दिग्गग्त वस्तु वज्रं नदी किमानुपात् ॥
(विष्णु-पुराण)

विषयाविष्ट चित्तवाले व्यक्तियोंके लिए भगवान् श्रीविष्णुके प्रति मनोनिवेष अत्यन्त सुदूर (कठिन) एवं असंभव है। क्योंकि जो पूर्व दिशाकी ओर चला जा रहा है, वह पश्चिम दिशामें अवस्थित वस्तुकी प्राप्ति करते कर सकता है? इस कथन द्वारा भी साधन भक्तिकी महिमा हो बर्णित है।

“मेरे प्रति भक्ति सम्पन्न व्यक्ति निश्चय ही सारे जगत्को पवित्र कर सकते हैं”—इस वाक्य द्वारा जब साधन भक्तिका ही संस्कार-नाश करनेका सामर्थ्य कहा गया है, तब साध्य भक्तिका भी संस्कार-नाश करनेका सामर्थ्य स्वतःसिद्ध है। अतएव साध्य भक्तिसे विषय मूँह निश्चय ही खण्डित होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

साधात् भक्तिके ध्वणादि क्रियाद्वारा भी पाप-क्षयादि कार्य हो जाते हैं, यह बात इस इलोकमें बर्णित है—

भुतोऽनुपठितो व्यात आहतो वानुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्मर्मा देवविश्वद्वृहोऽपि हि ॥
(भा० ११।२ १२)

इस भागवत धर्मका श्रवण, श्रवणके पश्चात् कीर्तन, चिन्तन, आदर और अनुमोदन करनेपर क्या देवद्वृही, क्या विश्व द्वृही, सभीको ये शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं।

पद्म-पुराणमें गाध-माहात्म्यमें देवदूत वाक्यमें यही बात बणन की गई है—
प्राहात्माम् यमुना-भ्राता सावरं हि पुनः पुनः ॥
भवद्विश्ववस्त्याज्यो विष्णुष्वेद् भजते नरः ।

यमराजने हमारे प्रति बारम्बार विदेष रूपसे ऐसा आदेश दिया है कि जो मनुष्य विष्णुका भजन करते हैं, उन्हें तुम लोग परित्याग करना। पुनः यह भी कहा गया है—

वैष्णवो यदृग्हे भुञ्जते
येषां वैष्णवसंगतिः ।
तेऽपि वः परिहार्याः
स्युस्तत्त्वंग-हत्किलिष्या ॥

वैष्णव जिनके गृहमें भोजन करते हैं एवं जिन्हें वैष्णव-संग प्राप्त होकर जिनके उत्त संप्रभावसे सभी पाप विनष्ट हो गये हैं, तुम लोग अवश्य ही उन्हें परित्याग करना।

वृहत्त्रादीय पुराणमें यज्ञमाली-उपार्थ्यान में भी बर्णित है—

हरिभक्तिपराणांतु संगिनां संगमाश्रितः ।
मुच्यते सर्वापेभ्यो महापातकवानपि ॥
हरिभक्ति-परायण व्यक्तियोंके संगियोंके संगका आश्रय ग्रहण करने पर महापापो

व्यक्ति भी सभी पापोंसे छुटकारा पा लेते हैं।
यमराजने भी कहा है—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतद्वच न स्मरति तद्वरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यज्ञार एकवापि
तानानयध्वमस्तोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥
(भा० ६।३।२६)

जीवितकालमें जिनकी जिह्वा एकबार भी भगवान् श्रीकृष्णके गुण और नामका कीर्तन नहीं करती, (जिह्वाके अभावमें) जिनका चित्त एकबार भी उनके पादपद्मका स्मरण नहीं करता, (चित्त विक्षेपके कारण) जिनका मस्तक एकबार भी श्रीकृष्णको प्रणाम नहीं करता, तुम लोग उन सभी विष्णुके कृत्य (सेवा) विहीन असाधु व्यक्तियों को मेरे समीप ले आओ।

और भी कहा है—

तानानयध्वमस्तो विमुक्तान् दुरुन्द-
पादारविद्वकरंदरमाद्वलम् ।
निष्ठिकश्चनैः परमहंसकुलं रसज्ज-
जुं दाइ गृहे निरव्यवत्सनि बद्धतृष्णान् ॥

निष्ठिकचन निःसंग परमहंस लोग जिनकी निरन्तर सेवा करते हैं, उन श्रीमुकुन्दपादपद्म के मकरन्दरस-पानसे पराड-मुख होकर जो सभी असाधु व्यक्ति नरकके द्वार रूप (इन्द्रिय-तपर्णाधीर) गृहमें ही अत्यन्त आसक्त हैं, उन्हें तुम लोग मेरे निकट ले आना।

स्कन्द-पुराणके रेवा-खण्डमें ब्रह्माजीने भी कहा है—

स कर्ता सर्वधर्माणां भक्तो यस्तव केशव ।
स कर्ता सर्वपापानां यो न भक्तस्तवाच्युत ॥

पापं भवति धर्मोऽपि
तद्वाभक्तोः कृतो हरे ।
निःदीयधर्मकर्ता
वाप्यभक्तो नरके हरे ।
सदा तिष्ठति भक्तस्ते ब्रह्महापि विमुच्यते ॥

हे केशव ! जो व्यक्ति तुम्हारे भक्त हैं, वे धर्मोंके ही अनुष्ठाता हैं और हे अच्युत ! जो व्यक्ति तुम्हारे भक्त नहीं हैं, वे सभी प्रकार पापोंके ही आचरणकारी हैं। हे हरि ! तुम्हारे अभक्त व्यक्तियोंके द्वारा किये गये धर्म भी 'पाप' में ही गिने गये हैं। तुम्हारे अभक्त सम्पूर्ण रूपसे धर्म-आचरणकारी हाने पर भी सबंदा ही नरकमें अवस्थान करते हैं। किन्तु तुम्हारे भक्त ब्रह्म-हत्याकारी होने पर भी पापसे विमुक्त हो जाते हैं।

पद्म-पुराणमें भगवानने भी कहा है—
मन्मित्तं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते ।
भाग्यनाहत्य धर्मोऽपि पापं स्वान्मतप्रभावतः ॥

मेरे निमित्त भक्तों द्वारा किये गये पाप-कर्म भी धर्म-रूपसे ही गिने गये हैं। मुझे अनादर कर किया गया धर्म भी मेरे प्रभावसे पाप-कर्मरूपमें परिणित हो जाता है।

यह युक्तियुक्त है, वयोंकि भगवान् विष्णु के श्रवण-कीर्तनादि धर्म हो मानवोंके परम धर्मके रूपमें परिणित है। एकादश स्कन्धके (११।४।२-३) इलोकमें भी कहा गया है— विराट् पुरुषके मुख, बाहु, जघा एवं चरणसे चारों आश्रम चारों वणोंके साहित उत्पन्न हुए थे। इनमें जो व्यक्ति अपने जनक साक्षात् ईश्वरका भजन नहीं करते, या अवज्ञा करते हैं, वे स्वस्थानसे अष्ट होकर अध्यपतित होते

है। इस वाक्यसे भगवद्-उपासना ही सभीका कर्त्तव्य है, यह निर्णय किया गया है। जिस किसी एक अंग-स्मरण करनेसे ही साधक कृतायंता प्राप्त करते हैं।

“जो व्यक्ति एकबार मात्र भी श्रीकृष्णके पादपद्ममें उनके गुणानुरक्त चित्तको निवेश किये हैं, उनके द्वारा सभी प्रायश्चित्त सम्पन्न हो चुके हैं। वे स्वप्नमें भी यमराज या उनके पाशधारी दूतोंका दर्शन नहीं करते”—परीक्षितके प्रति श्रीशुकदेवजीके इस वाक्यसे कृष्णपादपद्म स्मरणका प्रभाव-विषय ही कहा गया है।

श्रीनृसिंह-पुराणमें यमराजका भी कथन ऐसा ही है—

अहममरणाचितेन धात्रा
यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुहविमुखाद् प्रशास्त्रम् भर्त्यान्
हरिचरणप्रणतान् नमस्करोमि ॥

—त्रिविष्णवामी श्रीश्रीमद्भूक्तिभूदेव औतो महाराज

देवताओं द्वारा पूजित विधाता ब्रह्मा द्वारा मैं यम समस्त लोगोंके हित और अहित विचार करनेके लिये नियुक्त हूँ। जो सभी मनुष्य श्रीहरि और श्रीगुरुदेवके सेवाविमुख हैं, उन्हें मैं शासन किया करता हूँ, एवं जो व्यक्ति श्रीहरि एवं श्रीगुरुदेवके चरणोंमें प्रणत हैं, उन्हें मैं नमस्कार किया करता हूँ।

अमृतसारोद्वार प्रसंगमें स्कन्द-पुराणमें भी ऐसा वर्णन किया गया है—

न ब्रह्मा न शिवान्नोद्वा
नाहं नान्ये दिव्योक्तः ।

शक्तास्तु निष्ठं कर्तुं
श्रीकृष्णवाना महात्मनाम् ॥

अपने दूतोंके प्रति यमराजका यही कथन है कि ब्रह्मा, शिव, अग्नि, इन्द्र, मैं या अन्यान्य देवता लोग कोई भी महात्मा वैष्णवों के शासन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

भक्तिकी महिमा

यदि मधुमयन ! त्वदंश्रिसेवां हृदि विदधाति जहाति वा विवेकी ।
तदलिलमपि दुष्कृतं जिसोके कृतमकृतं न-कृतं कृतं च सर्वम् ॥

श्रीविष्णुपुरीपाद कहते हैं—हे मधुसूदन ! कार्याकार्य विचारपरायण व्यक्ति अपने हृदयसे यदि आपके सुन्दर चरणारविन्दोंकी सेवा करता है, तो आपकी सेवाके प्रतापसे तीनों लोकों में उसके द्वारा किये गये सम्पूर्ण पाप भी नहींके बराबर हैं। और यदि अज्ञानी व्यक्ति आपकी सेवाको त्यागकर केवल अपने इन्द्रिय-सुखोंके कार्यमें ही लगा रहे, तो उसके द्वारा न करने पर भी तीनों लोकोंके सम्पूर्ण पाप उसने कर लिये। अर्थात् भगवानसे विमुख होनेके कारण तीनों लोकोंके सभी पापोंका फल उसे भोगना पड़ेगा।

(पद्मावलीसे)

श्रीचैतन्य-शिक्षासृत

मधुर भक्ति-रस

(गतांक पृष्ठ १६८ से आगे)

रसके सभी विचार जानकर अष्टकालीय नित्यकृष्ण-लीलामें प्रवेश कर अपने अधिकार की किया, सेवा एवं भाव अवलम्बन करने पर अनायास ही वस्तुसिद्धि होगी। युक्त वैराग्यमें स्थित होने पर ही सहज परमहंस धर्म अपने आप ही जीवन-शेष तक उदित होगा।

जो सभी व्यक्ति स्थूल देहके सुखोंका बहुत आदर करते हुए चिन्मय देहके ये सभी आनन्-वैचित्र्य नहीं जान पाये, वे इन सभी बातोंके प्रति हृष्टिपात, मनन और आलोचना नहीं करेंगे। क्योंकि ऐसा करने पर इन सभी वैणनाओंको माँस-चर्मगत कार्य समझकर या तो अश्लोल कहते हुए निन्दा करेंगे अथवा आदर कर प्राकृत भावमें निमज्जित होकर अधःपतित होंगे।

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः

यदि विलासकलासु कृत्तृहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं

अशु तदा जयदेव-सरस्वतीम् ॥
रासवं वाध्याधीमें यह बात कही गयी है—
नेतद् समाजं ज्ञातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्वत्याचरन्मौल्याद् यथारुद्रोऽविधजंविषम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०।३३।३०)

अर्थात् सामर्थ्यं हीन अनधिकारी व्यक्ति मनके

हारा भी कदापि ऐसा आचरण नहीं करेंगे रुद्रने समुद्रसे उत्पन्न विष भक्षण किया था। मूढ़ता के कारण यदि कोई उस प्रकारका आचरण करे, तो वे निश्चय ही विनाश प्राप्त होंगे।

श्रीमन्महाप्रभुजीका यही उपदेश है कि श्रीमद्भागवतमें वर्णित श्रीकृष्ण-चरित्रका अनुशीलन करो, सभी परम रस प्राप्त कर सकोगे। श्रीमद्भागवतके चतुःश्लोकीके चरम श्लोकमें यह बात कही गयी है—
एतावदेव जिज्ञास्यं तस्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत्स्पात् सर्वं त्र सर्वदा ॥

(भागवत २।१।३५)

अर्थात् जो व्यक्ति आत्म-तत्त्व जिज्ञासु है, वे दैनिन्दिन श्रीकृष्ण लीलाएँ अन्वय या प्रत्यक्ष रूपसे एवं असुर-मारण आदि लीलाएँ व्यतिरेक या अप्रत्यक्ष रूपसे कृष्ण-तत्त्वका विचार कर जो वस्तु सर्वं त्र और सर्वदा नित्य बत्तं मान है, उसीका अनुसंधान करेंगे। परमात्मा तत्व ज्ञान ही प्रेमरूप प्रयोजन है। वह कृष्ण चरित्रमें दो प्रकारसे प्रकाशित हुआ है। साक्षात् रसास्वाद अन्वय रूपसे दैनिन्दिन नित्य लीलामें प्राप्त हो सकेगा। वही अष्टकालीय लीला है। असुर-मारण आदि लीलामें व्यतिरेक रूपसे कृष्ण-तत्त्व जाना जाता है। पूतना-वधसे प्रारम्भ कर कंस-वध तक असुर-वध लीला है। वे सभी लीलाएँ व्यतिरेक रूपसे ब्रजमें (भौमब्रजमें) और निर्गुण गोलोक

लीलामें अभिमानमात्र स्वरूपमें हैं। बस्तुतः वे वहाँ नहीं हैं एवं रह नहीं सकते। व्यतिरेक लीला पाठ कर रसिक भक्त शुद्ध भाव प्राप्त कर अन्वय लीलाका रस आस्वादन करते-करते गोलो ह दर्शन प्राप्त करेंगे। यहाँ संक्षेपमें ये सभी बातें कही गयी हैं। विशेष यत्नके साथ साधक और प्रेमारुद्धु पुरुष इसका अनुशीलन कर समझ लेंगे।

श्रीमद्भागवतका तीसरा श्लोक यह है—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं

शुकमुखादमृतद्रवसंयुतद् ।
पिवत भागवतं रसमालयं

मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

अर्थात् हे भगवत्प्रीतिके रसिक अप्राकृत रस विशेषकी भावनामें कुशल भवतगण ! श्रीशुकदेवजोके गुब्जसे प्रवाहित होकर शिष्य-प्रशिष्य आदि परमारा द्वारा स्वेच्छासे पृथ्वीमें अखण्डरूपसे अवतोर्ण, परमानन्द रसमय,

छिल्का और गुठली आदि कठिन हेयांशसे शहित, तरल पान करने यार्थ श्रीमद्भागवत नामक वेद-कल्पतरुके प्रपञ्च फल आप लोग मुक्त अवस्थामें भी पुनः पुनः पान करते रहे।

जब तक व्यतिरेक अनुशीलनकी आवश्यकता होती है, तब तक महारसमें मग्न नहीं हो सकते। व्यतिरेक अनुशीलनका यथार्थ फल उदय होने पर ही गोलाकर्का निर्गुण रस उदित होगा। उस समय तक भागवतका रस लेते हुए अन्वय और व्यतिरेक रूपसे अनुशीलन करने की आवश्यकता है। अष्टकाल की लोलाओंमें प्रवेश करते हुए रसास्वादन करें एव त्रजको अन्यान्य लीलाओंका आस्वादन कर इस माक्षात् रसास्वादनके प्रतिकूल विषय विनाश कर। तब ही फलकालमें या सिद्धिकालमें निर्गुणांका नाश होकर गोलाक का दर्शन और उसकी प्राप्ति विना किसी परिवर्तनके ही सकेगा।

अष्टम वृष्टि (उपसंहार)

हमारे इस शुद्ध ग्रन्थको विवार-ग्रन्थके रूपमें ग्रहण करें। इसे आस्वादन-ग्रन्थ नहीं समझेंगे। आस्वादन ग्रन्थ होने पर इसमें सर्व रसोत्तुष्ट मधुर रसके श्रीराधाकृष्णका तीनांवर्णन लिखा जाता। लीला-रसास्वादन बहुत से ग्रन्थोंमें वर्णन किया गया है। अधिक क्या कहें ? वे सभी उत्तर केवल आस्वादनके विषय होनेके कारण यह ग्रन्थ केवल विशुद्ध विचार-परायण है।

पांडितोंके मतानुसार विचारके पांच अंग हैं—(१) विषय, (२) संशय, (३) संगति, (४) पूर्वपक्ष और (५) सिद्धान्त। हमारे विचारका विषय क्या है—यह जिज्ञासा उदय

हो सकती है। इसके उत्तरमें हमारा यही कहना है कि जीवका जीवन ही इस विचारका विषय है। संशय क्या ? इस प्रश्न का उत्तर पढ़ो है कि गह जीवन क्या है और इसका उद्देश्य क्या है ? संगति यही है कि जीवका जीवन दो प्रकार का है—(१) शुद्ध जीवन और (२) वद्ध जीवन। शुद्ध जीवन शुद्ध चिदाममें है, जो नित्य पवित्र और आनन्दमय है। उसमें अभाव, शोक, भय और मृत्यु नहीं है। वद्ध जीवन इस जड़ जगतमें वर्तमान है। यह भी दो प्रकार का है—(१) बहिर्मुख और (२) अन्तमुख। बहिर्मुख जीवन चिदाम की ओर लक्ष्य नहीं करता, उसमें भगवानके

प्रति सान्मुख्य नहीं है। अन्तमुख जीवन बहिमुख जीवनकी तरह देखे जाने पर भी चिद्रामके प्रति सान्मुख्य का आदर करता है और उसीका मूल्य रूपसे अनुसंधान करता है। बहिमुख बद्ध जीवन चार प्रकारका है—
(१) नीतिशून्य बद्ध जीवन (२) नीतिक निरीश्वर बद्ध जीवन (३) नीतिक सेश्वर बद्ध जीवन और (४) निविशेष चिन्ता द्वारा विकृत जीवन।

नीतिशून्य निरीश्वर बद्ध जीवन दो प्रकारका है—(१) नरेतर जीवन और (२) नर जीवन। पशु-पक्षी इत्यादिका जीवन नरेतर जीवन है। उस जीवनमें बुद्धि वृत्ति लुप्त-प्रायः रहती है। नीति-बुद्धिरहित नर जीवन फिर से दो भागोंमें विभक्त है। सर्व प्रथम अत्यन्त असभ्य अवस्थामें मानवका आदिम बन्यलक्षण जीवन है—बन्यलक्षण जीवनमें पशुओंकी तरह मनुष्योंका यथेच्छाचारपूर्ण कार्य है। भय और आशा द्वारा प्रेरित हाकर चन्द्रसूर्य आदि चाकचिक्य (चमत्कार) युक्त जड़ वस्तुओंको भिन्न-भिन्न ईश्वर समझते हैं। इस अवस्थाके व्यक्तियोंके लिए नीति भी नहीं है और वास्तव ईश्वर भी नहीं है। जीवकी सिद्ध-सत्तागत भक्ति वृत्ति अत्यन्त लुप्तप्रायः होकर भी उसको अहितरपका परिचय मात्र देती है। जो व्यक्ति द्रव्य-शक्ति ज्ञान प्राप्त कर युक्तिकी चालना (प्रेरणा) से अनेक पदार्थ-विज्ञान और शिल्पकी उन्नति कर इन्द्रिय सुखोंकी परिचर्या करते हैं, तथापि नीति और ईश्वरको नहीं मानते। वे नीति बुद्धिरहित नरजीवनके द्वितीय भागमें अवस्थित हैं। ईश्वर और नीतिके प्रति उनका ध्यान नहीं है।

आखिरमें कहा गया जीवन नीतिके प्रति आदरयुक्त होने पर ही नीतिक निरीश्वर बद्ध जीवन होता है। वही दूसरे प्रकारका बद्ध जीवन है। आखिरमें कहे गये जीवनमें इस विश्वासयुक्त होने पर ही नीतिक सेश्वर बद्ध जीवन होता है। इस जीवनमें ईश्वरके प्रति कर्त्तव्य कर्म नीतिके अधीन होनेके कारण बहिमुखता दूर नहीं होती। वही तीसरे प्रकारका बद्ध जीवन है।

जिस स्थानमें इस जीवनमें अत्यन्त निविशेष चिता आकर स्थान प्राप्त करती है और उसके अधीनमें जीवनको ग्रहण कर नीतिके हाथसे छीन लेती है एवं क्रमशः ईश्वर विश्वासको केवलाद्वैत विश्वासमें बदल देती है, वहीं निविशेष चिता-विकृत बहिमुख जीवन देखा जाता है। यहां चौथे प्रकारका बहिमुख बद्ध-जीवन है।

जो व्यक्ति परमेश्वरको जीवन-सर्वस्व जानकर समस्त विज्ञान शिल्प, नीति, ईश्वरवाद और चिन्ताको ईश-भक्तिके अधीन कर जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं, उनका जीवन बद्ध होनेपर भी अन्तमुख है। अन्तमुख जीवनको साधन-भक्त जीवन कहते हैं।

अशेष जड़-सम्बन्धका विनाश कर प्रकृष्ट रूपसे उद्दीपित निर्मल त्वधर्मके साथ जीवकी चिद् रसमें अवस्थिति ही मुख्य उद्देश्य है। वही अन्तमुख जीवनका फल है।

हमारी इस संगतिको श्रवण कर पूर्वोक्त चार प्रकारके बहिमुख बद्ध-जीवन-स्थित कुसंस्कारापन जीव अपनी अपनी निष्ठा से एक-एक पूर्वपक्ष किया करते हैं। अपने अपने कोणमें बैठकर उस-उस अवस्थाके जीवों ने युक्ति की सहायतासे विषय, संशय, संगति,

पूर्वपक्ष विचार कर एक एक सिद्धान्त कर रखा है ये सिद्धान्त ही हमारे निकट पूर्वपक्षके रूपसे प्रसारित होते हैं। इसमें यही बात है कि जिस जीवनमें स्थित होकर जीव पूर्वपक्ष करते हैं, उस जीवनके पश्चात् ही निकटवर्तमान उच्च-जीवनमें स्थित जीवोंने ही उस पूर्वपक्ष का निरास कर अपना सिद्धान्त कर रखा है। उन सब सिद्धान्तोंका उल्लेख करनेसे ही निम्न स्थित जीवनके सिद्धान्तका निरसन (खण्डन) हो जाता है। हमारे तुरन्त नीचे जो जीवन देखा जाता है, उस जीवनके सिद्धान्तका निरसन करना ही हमारा अपना कार्य है। हम उस प्रकारके कार्य करेंगे। हमारे ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानमें ये सभी सिद्धान्त दिखलाये गये हैं। सरल करनेके लिए फिरसे उनकी संक्षेपमें आलोचना करेंगे।

नीतिशून्य बहिमुख जीव इस प्रकार युक्ति किया करते हैं—परमाणु सभीके संयोग-विषय द्वारा यह विचित्र जगत् प्रकृतिकी अनांद विधिक अनुसार उत्पन्न हुआ है। इस जगतका सृष्टिकर्ता कोई नहीं है। हम परमेश्वरके सम्बन्धमें जो विश्वास करते हैं, वह विश्वास कुसंस्कारसे उत्पन्न है। यदि परमेश्वर नामक किसी प्रकाण्ड चैतन्यकी आवश्यकता हो, तो उस चैतन्यकी सृष्टि करनेवाले और एक कर्ताकी आवश्यकता हो पड़ती है। उससे परमेश्वरमें विश्वास स्थिर नहीं रहता। जड़ शरीरमें जो जड़मय मस्तिष्क है, उसीकी गठन-प्रणालीसे बुद्धिका उदय होता है। उस गठनके भग्न होनेपर बुद्धिका भी और अस्तित्व नहीं रहता। जिसे हम आत्मा समझते हैं, वह अन्ध-विश्वास मात्र है। शरीरके पतन होनेपर अस्तित्वका अभाव

होगा या मूल-तत्त्वमें प्रवेश करना होगा। इस जीवनमें अवस्थित होकर मरण तक जितना सुख-भोग कर सकते हो, उतना करो। केवल यही मनमें रखना पड़ेगा कि सुख-भोग कार्यमें जिस किसी ऐहिक भावी अमुख या अगुविधाका उदय न हो। राजदण्ड, प्राणदण्ड, प्राणवध, दूसरे के साथ शत्रुता, पीड़ा, अयश—ये सभी ऐहिक अमुख हैं। देहका सुख ही प्रयोजन है, क्योंकि उसको छोड़कर दूसरा सुख नहीं है। जीवनके सुखोंकी वृद्धि करनेके लिए विज्ञान, शिल्प, चित्रकारिता, कला आदिकी जितनी उन्नति कर सकते हो, युक्ति और परिश्रम द्वारा ऐसा करो। जीवनकी वन्य-अवस्थाको दूर कर पहनाव, गृहस्थ-जीवनके द्रव्यसमूह, शरीरके चाक्चिक्य एवं सौन्दर्य एवं बाहरी सम्यताकी वृद्धि करो। सुडाय, सुगन्ध-द्रव्य, सुनने योग्य इन्द्रियतर्पण-कारी वाद्ययन्त्र, देखने योग्य प्रतिकृति एवं सुखस्पर्श-विस्तरण आदि रचना कर सुख-भोग करो। उत्तम अट्टालिका, नाना प्रकारके यानादि निर्माण कर सौन्दर्य वृद्धि करो एवं व्यवहार करते रहो। सम्यता ही नरजीवनकी परिपाठी है। जीवनके उपकारके लिए इतिहास-संग्रह करो। अनुसंधान द्वारा जिन सभी तत्त्वोंका आविष्कार करते हो, उनका ठीक रूपसे संरक्षण करो। अलौकिक एवं अयुक्त-कुछ भी स्वीकार नहीं करना। जहाँ साधारण सुख एवं अपना सुख परस्पर विरोध करें, वहाँ साधारण सुखका परित्याग कर अपने सुखकी उन्नति करो। इस प्रकारके प्रवल युक्तयुक्त सभी वाक्योंको सुनकर असभ्य एवं अप्राप्त-ज्ञान वन्य-जातिके मनुष्य लोग अपने पूर्व कार्यकर्म परित्यागकर जीवन

की लज्जतिके लिए प्रयास करते हैं। उनके लिए सूर्यचन्द्र विश्वास, पशुबध कर जीवन-निवारण एवं दनमें पशुओंकी तरह कालयापन आदि सभी कार्य दूर हो जाते हैं। नीतिशून्य युक्तिवादी बहिमुख मनुष्य लोग उसमें अपने गौरवद्वारा हाती फुलाया करते हैं। चार्वाक, सरदेनाप्लास आदि इन्द्रियसुखवादी लोगोंका जीवन ही इस जीवन का उदाहरण है।

नीतिक बहिमुख जीव और भी अधिक बुद्धि पाकर नीतिशून्य बहिमुख जीवनको शीघ्र ही परास्त करते हैं। वे कहते हैं—भाई ! तुम्हारी सभी बातोंको जानता हूँ, केवल तुम्हारे स्वेच्छाचारको ठीक नहीं समझता। तुम जीवनका सुख दूँड़ रहे हो, किन्तु नीतिके बिना जीवनका सुख कौसे होगा ? तुम्हारे जीवनको ही केवल जीवन मत समझो। सामाजिक जीवनका ही जीवन कहो। जो विधि सामाजिक जीवनकी सुखसमृद्धि करनेमें

समर्थ है, वही श्रेष्ठ है एवं वही नीति है। उस नीतिद्वारा सुख-भोग करना हो मानवकी पशुओंये श्रेष्ठता है। जहाँ अपने दुःखद्वारा समाज का सुख हो, वहाँ अपना दुःख स्वाकार करना ही युक्तिवाले पुरुष का कर्तव्य है। यही निष्काम नीति है, यही एकमात्र मानव धर्म है। सामाजिक सुख-समृद्धि करनेके लिए प्रेम, मैत्री, कृपा आदि प्रधान-प्रधान सभी भावोंका अनुशीलन करो। ऐसा होनेपर हिसाद्वेषादि दुष्ट भाव सभी मानव-चित्तको दूषित नहीं कर सकते। विश्वप्रेम ही विश्वसुख है। उसे बढ़ाने लिए कोई उपाय अवलम्बन करो। यह Positivist अर्थात् निश्चयवादी कमटी [Comte] और मिल [Mill] एवं Socialist अर्थात् समाजवादी हारबट्टेन्सर Herbert Spencer आदि एवं बौद्ध तथा नास्तिक व्यक्तियोंका निगृह मत है।

(क्रमशः)

विज्ञान का धर्मात्म स्वरूप

'विज्ञान' शब्दका प्रयोग अधिकांश व्यक्ति ही किया करते हैं। किन्तु इसके यथार्थतात्पर्यसे इनेंगिने व्यक्ति ही परिचित हैं। प्रायः अधिकांश व्यक्ति ही इस शब्दका विकृत अर्थ इड़ाग कर विज्ञानके यथार्थ स्वरूपसे बंचित होते हैं।

विज्ञान शब्दका अर्थ है विशेष रूपसे ज्ञानना अर्थात् भगवद्ज्ञानकी विशेष रूपसे अनुभूति प्राप्त करना। अनुभूतिरहित ज्ञान केवल शुष्क ज्ञान है। वह नीरस और भक्ति

सम्बन्धसे रहित है। सदगुरके श्रीमुखसे भगवत्तत्त्वका अवण करते-करते सेवोन्मुखी प्रवृत्ति जागरित होती है। सेवोन्मुखी प्रवृत्तिके जागरित होने पर कीर्तन-स्नारण आदि भजनके अंगोंका पालन होता है। इस प्रकार भजन करते-करते सम्बन्ध ज्ञानका उदय होता है। सम्बन्ध ज्ञानके परिपूर्ण होने पर आत्म-स्वरूपकी क्रमशः उपलब्धि होने लगती है। अपने आत्म-स्वरूप द्वारा सेवा करते-करते भगवानके नाम, रूप, गुण, लीला आदिकी

सम्यक् प्रकारसे अनुभूति होने लगती है। सभी अनथोंसे मुक्त होकर प्रेमकी विशुद्ध भूमिकामें पहुँचनेपर ज्ञानकी क्रिया पूर्णता प्राप्त करती है। यही विज्ञानकी यथार्थ अवस्था है। इस विज्ञानको जान लेने पर सब कुछ जानना हो जाता है—'यज्ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।' इस विज्ञानके प्राप्त करने पर या ईश्वरके साक्षात्कार होने पर अविद्या-अहंकार या स्थूल-सूक्ष्म अभिमान नष्ट हो जाता है, सभी प्रकारके सन्देह विनष्ट हो जाते हैं एवं सभी कर्म एवं कर्मफल विनष्ट हो जाते हैं—

भिद्यते हृदयप्रत्यनिधिष्ठित्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि इष्ट एवात्मनीश्वरे ॥

(भा० १२२१)

इस विज्ञानकी ही बात हमारे सभी सात्त्विक शास्त्रोंमें वर्णन की गई है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी इसी विज्ञानको सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। श्रीश्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीरायरामानन्द-सदादमें श्रीराय-रामानन्दने श्रीमन्महाप्रभुके प्रश्नके उत्तरमें कहा है—'कृष्ण भक्ति विना विद्या नाहि आर।' अतएव कृष्ण भक्ति ही यथार्थ विज्ञान है। चतुःश्लोकी-भागवतमें ब्रह्माजीको भगवान् नारायणने इसी विज्ञानका उपदेश दिया है। यही विज्ञान सभी विद्याओंकी आखिरी सीमा है। समस्त विद्याओंकी सार्थकता इसीमें है कि वे इस विज्ञानके अनुगमनशीरणी हों एवं उनका चरम उद्देश्य इसीका पुष्टिकरण हो।

यह विज्ञान नित्यसिद्ध एवं अपौरुषेय है। भगवान्ने अपनेसे विमुख जीवोंको स्वगति प्रदान करनेके लिए एवं उन्हें अपने पादपद्मका आसव पान करानेके लिए इस विज्ञानको

वेदादि शास्त्रों द्वारा प्रकट किया है। इसी विज्ञानको प्राप्त कर ही जीव अशोक, अभय एवं अमृतत्व प्राप्त कर सकता है। यह विज्ञान ही अप्राकृत ज्ञानका आधार है।

बिना भगवत्कृपा या साधु-वैष्णवोंकी कृपा अथवा उनको एकान्तिकी शरणागतिके इसकी प्राप्ति नहीं होती। यमराजने नचिकेताको इसी विज्ञानका उपदेश दिया था। हमारे महाजनोंने इसीका अनुमोदन किया है। अतएव श्रीमद्भगवद्गीतामें इसे प्रणिपात, परिप्रश्न एवं सेवा द्वारा जाननेका उपदेश है—

तदुद्दिप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
बपदेष्यन्ति ते ज्ञानं जानिनस्तत्त्वदक्षिणः ॥

(गीता ४।३४)

भगवानके यथार्थ भवत ही यथार्थ विज्ञान है। यह विज्ञान ही सब विद्याओंकी प्रतिष्ठा एवं परम लक्षितव्य विषय है। इसी विज्ञान को शास्त्रोंमें 'प्रज्ञा', 'ब्रह्म-विद्या', 'थेयः' शब्दोंसे वर्णन किया गया है। भगवान प्रकृत ज्ञानस्वरूप या विज्ञानमय है—'प्रज्ञानं ब्रह्म'। बुद्धिमान् पुरुषका कर्तव्य है कि वह परब्रह्मको अवगत होकर विज्ञानस्वरूप प्रेम भक्ति प्राप्ति की चेष्टा कर—

तमेव धोरो विज्ञाय प्रज्ञा कुर्वीत ब्राह्मणः ।

जिस व्यक्तिने इस विज्ञान या परब्रह्म-सम्बन्धी ज्ञानकी अनुभूति प्राप्त कर ली, वही यथार्थ ब्राह्मण है—

एतदक्षरं गार्ग विदित्वा-

उस्माल्लोकात् प्रति स ब्राह्मणः ।

यदि इस विज्ञान या भगवद्भक्तिकी प्राप्ति न हो, तो मनुष्य सभी धर्मोंका अनुष्ठान

करके भी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मिक वे सभी धर्म के बन बन्धनकारी मिथु होते हैं।

इस विज्ञानका सम्बन्ध जीवात्माके शुद्ध चिन्मय स्वरूपसे है। इस विज्ञानका उद्देश्य शुद्ध जीवात्माका उसके परम प्रेमास्पदरूप भगवानसे सम्बन्ध कराना है। यह विज्ञान प्राकृत विचार एवं धारणासे अतीत है। जहाँ जड़ीय विद्याओंकी परिसमाप्ति होती है अर्थात् जड़ विद्याओंकी आलोचना करते-करते जब उनकी अथाधर्थता एवं हेतुता को जानकर उनके प्रति विरक्ति हो जाती है, तब जीवके हृदयमें चिद्विज्ञानके बारेमें जाननेके लिए कुतूहलता एवं जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उस समय वह 'भगवद्-तत्त्वदर्शी' या 'चिद्विज्ञानी' भगवद्-भक्तोंका आध्रय ग्रहण करता है। यह विज्ञान केवल ग्रन्थोंका या मनःकल्पित विषय नहीं है। यह साक्षात् अनुभूतिप्राप्त एवं परम सत्य विषय है। बद्ध जीव अपना स्वरूपकी विस्मृति एवं द्वितीय वस्तुरूप मायामें अभिनिवेशके कारण चिद्विज्ञानकी यथाधर्ताको उपलब्धि नहीं कर पाते एवं इसमें सहज ही उनका विश्वास नहीं होता।

जीवात्माका स्वरूप ही विज्ञानमय है। उसके शुद्ध चिन्मय स्वरूपमें जड़, मायाजनित अज्ञान लेशमात्र भी नहीं है। शुद्ध साधु वैष्णवोंके संगसे जीवात्माका यह विज्ञानमय स्वभाव जागरित हो जाता है। विज्ञान यथाधर्ममें चेतनका धर्म है, वह स्थूल या सूक्ष्म पदार्थका धर्म नहीं। जब तक कार्य रूपमें किया न जाय, तब तक अनुभूति प्राप्त नहीं हो सकती। बिना अनुभूतिके तत्त्वमें प्रतिष्ठित हुआ नहीं जा सकता। तत्त्वमें प्रतिष्ठित

होने पर ही मिद्याभिनिवेश एवं भ्रान्त धारणाओंका निराकरण होता है।

चिद्विज्ञानकी प्राप्तिके लिए किसी जागरिक योग्यता या गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। यह विज्ञान केवल विशुद्ध सेवोन्मुखी प्रवृत्ति एवं अहैतुकी कृपा द्वारा प्राप्त होता है। चिद्विज्ञानरूप भगवद्-भक्तिका अनुष्ठान कर जीवात्मा सुप्रसन्नता प्राप्त करते हैं। चिद्विज्ञानकी उत्पत्ति स्वयं भगवानुके सञ्चिदानन्दमय श्रीविग्रहसे हुई है। यह शब्द-ब्रह्म स्वरूप है। सभी पुरुषार्थोंमें यह विज्ञान ही सर्वथेष्ठ एवं एकान्त वरणीय है। चिद्विज्ञान पूर्णतम वस्तुकी पूर्ण-प्रीति-विधानकारी है। अतएव इसकी प्राप्तिसे सभी ज्ञान एवं विद्याओंकी प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। उसके लिए पृथक् रूपसे प्रयास नहीं करना पड़ता। भगवद्-भक्त लोग जागरिक दृष्टिसे भले ही विद्योष सम्पन्नता या योग्यता नहीं रखे, किन्तु अपने चिद्विज्ञानके बलसे वे सभी विद्यन-वाधाओंको अनायास ही पार कर लेते हैं एवं सम्राट्, चक्रवर्ती आदिकी भी परवाह नहीं करते। स्थूल रूपसे भले ही ऐसा प्रतीत हो कि वे कुछ जगतका उपकार नहीं कर रहे हैं अथवा वे अकर्मण्यताका आध्रय ले रहे हैं, किन्तु अन्तर्दृष्टिसे विचार करने पर ते इतना जगतका उपकार कर रहे हैं एवं इतना महान् कार्य कर रहे हैं कि जगत्के तथाकर्त्तिवंडेसे घड़े व्यक्ति उनकी उपलब्धियों एवं कार्य-अमता तक पहुँचनेमें असमर्थ हैं। भगवद्-भक्त लोग जिस तीव्र गतिसे अपने लक्ष्य स्थानकी ओर बढ़ रहे हैं, वह स्थूल एवं सूक्ष्मदर्शी व्यक्तियोंके लिए अविगाह्य एवं

दुर्लभ्य है। भगवद्भक्त लोग प्राकृत भूमिकामें रहकर भी उससे सर्वदा अतीत एवं मुक्त हैं। वे नित्यकाल ही अप्राकृत भूमिकामें अवस्थित हैं।

वर्तमान नथाकथित जड़ विज्ञान यथार्थ विज्ञान नहीं, उसका आभास या विकृति मात्र है। जड़ विज्ञान मनुष्यको यथार्थ ज्ञानकी ओर ले जाना तो दूर रहे, उल्टे उसे अवधारणा एवं अश्लीलताकी ओर ले जा रहा है। जड़ विज्ञान मनुष्यको और भी भौतिकवादी एवं अपस्वार्थपर बनाता जा रहा है। वर्तमान जड़ विज्ञान मनुष्यको ईश्वर-विश्वास एवं आत्म-ज्ञानसे दूर ले जा रहा है। जड़ विज्ञान प्रत्यक्ष एवं अनुमान पर आधारित है। अतएव इसकी मान्यताएँ एवं सिद्धान्त नित्य कालके लिए सत्य साधित नहीं होते। समय समय पर जड़ वैज्ञानिकोंके सिद्धान्त एवं विचार बदलते रहते हैं। जड़ वैज्ञानिक अवरोहवादको स्वीकार नहीं करते। वे आरोह पथका ग्रहण कर अधोक्षेत्र-तत्त्व भयबानके अस्तित्वको या तो स्वीकार ही नहीं करते, नहीं तो उनके सम्बन्धमें कल्पित एवं आन्त धारणाएँ बना जाते हैं। जड़ विज्ञान मनुष्यको जड़ोय चक्रचिकित्य एवं क्षणिक प्राप्तिसे मोहित कर उसे अत्यरे गर्तमें डाल रहा है। भौतिक साधनोंकी प्राप्ति एवं क्षुद्र भौतिक सुख-सुविधाओंको ही जड़ विज्ञान अपना सर्वस्व एवं परम लक्ष्य मान बैठा है। उसके आविष्कार एवं उपलब्धियाँ अधिकांश रूपमें छवंसात्मक कार्यकी ओर ही प्रयोग की जा रही हैं, न कि रचनात्मक एवं कल्याणकारी कार्योंके लिए। जड़ वैज्ञानिक मनुष्यको पूर्ण सुखो एवं पूर्ण साधन सम्पन्न कर देनेका दावा

कर रहे हैं। किन्तु उनकी यह दावा नितान्त हास्यास्यद एवं कदापि परिपूरण होनेवाला नहीं है। भौतिक साधनोंका विनाश अवश्यभावी है। विरदिन तक कोई व्यक्ति इस संसारमें सुखी नहीं हो सकता। क्योंकि उसके साधन एवं सामर्थ्य—दोनों ही सीमित हैं। तिस पर भी उसे तरह-तरहकी बाधाएँ एवं विपत्तियाँ सर्वदा घेरे हुए हैं एवं उसे विविध प्रकारके दुःखोंको भी भोगना पड़ता है। असीम दुःखके पश्चात् जो क्षणिक सुखका आभास मिलता है, उसीका बहुमानन करते हुए वर्तमान जड़ विज्ञान द्वारा मोहित मानव असीम, अपुरन्त, अलौकिक नित्य सुखका अनादर कर रहा है। यह उसकी अज्ञानताको छोड़कर और क्या हो सकती है?

जड़ विज्ञानने मनुष्यको स्वाभाविकता एवं सरलतासे हटाकर अस्वाभाविकता, कृत्रिमता एवं कृटिलताकी ओर ले जा रहा है। मनुष्य उसके फलदेमें पड़कर अपना सर्वस्व खो बैठा है। वह भले-बुरे विचारका परित्यागकर अन्धाधुन्ध अपने विनाश की ओर बढ़ रहा है। जिस किसी प्रकारसे अपने क्षुद्र स्वार्थकी परिपूर्ति एवं क्षणिक सुख-सुविधा प्राप्तिके लिए आजकलका सम्य कहलानेवाला मानव क्या न करने के लिए तैयार है?

अपनी क्षुद्र-क्षुद्र उपलब्धियों एवं असम्पूर्ण धारणाओंके आधार पर वर्तमान जड़ वैज्ञानिक युगका मनुष्य ईश्वरके अस्तित्वको भी मिटा देनेकी अयथा एवं कभी न सफल होनेवाली असफल चेष्टा कर रहा है। वह स्वयं अपनेको पूर्णसम्पन्न, सर्वसमर्थ, ईश्वरतुल्य मानने लगा है। वह दूटे काँचके टुकड़ेके पीछे अमूल्य चिन्तामणिकी उपेक्षा कर रहा है। वह

प्रकारान्तरसे अमर बननेका असम्भव प्रयास कर रहा है। वर्तमान मनुष्य बहुत कुछ करने पर भी वह अपनी मृत्युको जय करनेमें सर्वथा असमर्थ है।

यदि मनुष्य जड़ विज्ञानकी सहायतासे शोक, भय आदिको दूर कर देनेका दावा करता है, तो सबंदा इतना दुःखित, चिन्तित क्यों रहता है? उसे दूसरोंसे या मृत्युसे क्यों भय है? जड़ विज्ञान यदि सब कुछ कर सकता है, तो उससे ईश्वरका साक्षात्कार या अप्राकृत विषयोंकी उपलब्धि क्यों नहीं होती? अतएव यह जड़ विज्ञान असम्पूर्ण एवं हेय है। यह अवाड़् मनगोचर अप्राकृत तत्त्वका अनुसंधान नहीं दे सकता। चिद् विज्ञान भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषोंसे सबदा परिमुक्त है। दूसरी ओर जड़ विज्ञान इन सभी दोषोंका आकर-स्वरूप है।

वर्तमान जड़ विज्ञान मनुष्योंके अभाव, आवश्यकताओंको मिटाना तो दूर रहा, उल्टे उसकी आवश्यकताओं एवं अभाव को बढ़ाता जा रहा है। मनुष्यकी समस्याएं भी बढ़ती जा रही हैं। तरह-तरहके रोग, क्लेश, विपत्तियाँ आदि बढ़ती जा रही हैं। मनुष्यकी भोग-पिपासा मिटा तो दूर रहे, उल्टे वह तरह-तरह की उपायोंसे, छल-बलसे अपनी भोग-लालसाको चरितार्थ करनेकी चेष्टा कर रहा है। जड़ विज्ञानसे सर्वांगीन उन्नति नहीं हो पा रही है। इससे मनुष्य का नैतिक एवं चारित्रिक पतन हो रहा है। वर्तमान युगमें मनुष्यका जीवन यन्त्रवत् बनता जा रहा है। वह अब अपने आप पर विश्वास नहीं करता, वह दिनों दिन स्वावलम्बी होनेके बदल परावलम्बी होता जा रहा है। उसके

मस्तिष्कका विकाश नहीं हो रहा है। उसके बल-बुद्धि आदि दिनों दिन क्षीण होती जा रही है।

बिना चिद्विज्ञानके आश्रय किये मनुष्य की सर्वांगीन उन्नति असंभव है। चिद्विज्ञान के आश्रयसे ही उसकी सभी समस्याओंका समाधान हो सकता है एवं उसके अभाव एवं कमियाँ दूर हो सकती हैं, वह सब प्रकारसे पूर्ण एवं सर्वसम्पन्न बन सकता है। चिद् विज्ञान के आश्रयसे ही वह शोक, भय एवं मृत्युका अतिक्रमण कर सकता है। अतएव शास्त्रोंमें कहा गया है—‘तमेव विदित्वा इतिमृत्युमेति।’ मनुष्य चिद् विज्ञानके आश्रयसे ही नित्य आनन्द प्राप्त कर सकता है। जड़ विज्ञान द्वारा मनुष्य कदापि पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। चिद् विज्ञान तक द्वारा या अपनी स्थूल-सूक्ष्म बुद्धिद्वारा पाया नहीं जाता। यह केवल सम्पूर्णरूपसे निष्कपट भगवद् प्रपत्ति द्वारा प्राप्य है। इस विज्ञानको पाकर ही जीव गुणातीत होकर जन्म-मरणपर जय प्राप्त कर शाश्वतत्व प्राप्त करता है। अतएव कहा गया है—

नित्यो निःदानो चेतनश्चेतानान्।

मेको बहुनां विद्धाति यो कामान्।

तमात्मस्त्वं येऽनुपश्यन्ति धीरा—

स्तेषां ज्ञान्ति शाश्वती नेतरेषाम् ॥

जो भगवान् नित्य या वास्तव वस्तुओंमें परम नित्य या परम सत्य वस्तु हैं, जो चेतन जीवोंके भी मुख्य चेतन हैं, जो एक होनेपर भी सभीकी कामना पूरण करते हैं, ऐसे आत्मामें स्थित भगवान्को जो सभी बुद्धिमान व्यक्ति पारदर्शन करते हैं, वे ही नित्य शान्ति प्राप्त करते हैं, दूसरे उसे पा नहीं सकते।

—कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी